आभु

इस विश्व की रचना में आभु और अभ्व ये दो मौलिक तत्त्व हैं।[1] आभु इस संसार के सभी चल और अचल वस्तुओं में नित्य तत्त्व के रूप में सदा रहने वाल एक मूल तत्त्व है।[2] जिस प्रकार अद्वैतवेदान्त दर्शन में सृष्टि का मूल तत्त्व ब्रह्म है। सांख्य दर्शन में सृष्टि का मूल तत्त्व पुरुष है। न्याय दर्शन में सृष्टि का मूल तत्त्व परमाणु है। उसी प्रकार वैदिकविज्ञान में सृष्टि का मूल तत्त्व आभु है। आभु शब्द का उल्लेख क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद और ब्राह्मण ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। आभु के दूसरे नाम भी हैं जैसे- रस, आत्मा, ब्रह्म, अमृत, पुरुष, अव्यय, ज्ञान, सत्य आदि।

आभु द्रष्टा है।[3] द्रष्टा का अर्थ है देखने वाला। सम्पूर्ण जीव मात्र अपने जीवन में प्रतिक्षण कुछ न कुछ देखता ही रहता है। जैसे 'मैं घड़ा को देखता हूँ' ' मैं इस किताब को देखता हूँ'। इन दोनों वाक्यों में जो देखने वाला तत्त्व है, वह द्रष्टा कहलाता है। ऐसे ही अनुभव करने वाला जो तत्त्व है वह आभु ही है।

मन, प्राण और वाक् ये तीनों आभु कहलाते हैं। मन से रूप, प्राण से कर्म और वाक् से नाम क्रमशः उत्पन्न होते हैं। यहाँ रूप का अर्थ है – हाथी, घोड़ा, कलम, बस इत्यादि अर्थात् भिन्न-भिन्न आकार के जीव एवं वस्तु आदि। रंग भी रूप कहलाता है। जो हम देखते हैं वह रूप ही है और उसका कारण मन है। प्राण से कर्म होता है इसका तात्पर्य है कि कोई भी गति हवा में ही होती है। गति का ही नाम क्रिया अर्थात् कर्म है। किसी कार्य के लिये जब हम हाथ उठाते हैं वहाँ हाथ उठता है, परन्तु यह प्राण या वायु का ही कार्य है। वाक् से नाम उत्पन्न होता है अर्थात् किसी आकार का नाम हाथी है किसी आकार का नाम घड़ा है। यह वाक् का काम है नाम रखना। वाक् का दूसरा नाम वाणी है। वाणी ही नाम देती है, पुकारती है। अब रूप,कर्म और नाम ये तीनों एक ही पदार्थ में रहते हैं। जैसे घड़ा है। यहाँ घड़ा में छोटा-बड़ा आकार है। इसके साथ-साथ घड़ा यह नाम भी है और घड़ा को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते हैं। अत एव इस में क्रिया भी है। तीनों ही चीज एक ही सत्ता घड़े में रहते हैं। रूप, कर्म और नाम घड़े में हैं। घड़ा का यदि नाश हो जाता है तो इन तीनों का अपने आप नाश हो जाता है। घड़ा विनाशशील है परन्तु उसका कारण मन, प्राण और वाक् का नाश नहीं होता है। वह सदा रहता है। अत एव ये तीनों अमृत हैं अर्थात् न मरने वाला। इसीलिये यह आभु अमृतस्वरूप है। अर्थात् इसका कभी नाश नहीं होता है।

---

[1] आभ्वभ्वसंज्ञे स्त इमे च मूले। *संशयतदुच्छेदवाद हिन्दीविज्ञानभाष्य, प्रथमकाण्ड, पृ.१३*

[2] आसमन्तात् भवति। *संशयतदुच्छेदवाद हिन्दीविज्ञानभाष्य, प्रथमकाण्ड, पृ.१२*

[3] द्रष्टाभु। *संशयतदुच्छेदवाद हिन्दीविज्ञानभाष्य, प्रथमकाण्ड, पृ.१३*

आनन्द, चेतना और सत्ता ये तीनों आभु के रूप हैं।[4] किसी भी वस्तु के ज्ञान में तीन वस्तुएँ होती हैं- ग्रहीता (वस्तु को धारण करने वाला) ग्राहक (वस्तु को लाने वाला), और ग्राह्य (जिस वस्तु को बाहर से लाया जाता है वह ग्राह्य है)। ग्रहीता मालिक है, ग्राहक नौकर है तथा ग्राह्य वस्तु है। मालिक नौकर से कहता है कि आप 'कलम' ले आइये। लाने वाला नौकर ग्राहक है तथा वही वस्तु लाकर वह मालिक को देता है। मालिक उस वस्तु का उपयोग अथवा धारण करता है। अत एव मालिक ग्रहीता है। जो भी जड़ या चेतन वस्तु बाहर से लाया जाता है वह वस्तु ग्राह्य है। आनन्द, चेतना और सत्ता के सन्दर्भ में आनन्द ग्रहीता है क्योंकि उसी के पास सब कुछ जाता है, वही उस वस्तु को धारण या उपयोग करता है। चेतना लानेवाला ग्राहक है क्योंकि वस्तु को बाहर से वही लाता है। लाने वाली सभी जड़-चेतन वस्तु ही सत्ता है, वही ग्राह्य कहलाता है।

आनन्द, चेतना और सत्ता इन तीनों में आनन्द ही पहला तत्त्व क्यों है एवं इस आनन्द का क्या अर्थ है। संस्कृत में आनन्द का पर्याय शब्द समृद्धि है। लौकिक आनन्द और ब्रह्म स्वरूप आनन्द इन दोनों आनन्दों को समझना आवश्यक है। जब तक लौकिक आनन्द की व्याख्या नहीं की जायेगी तब तक अलौकिक ब्रह्म स्वरूप आनन्द को नहीं समझा जा सकता है। अत एव यहाँ समृद्धि के द्वारा आनन्द को स्पष्ट किया जाता है। संस्कृत व्याकरण के अनुसार आनन्द शब्द 'टुनदि समृद्धौ' धातु से बना है। आनन्द का दूसरा नाम समृद्धि है। जिसके पास सौ रुपये हैं और दस रुपये और आ जाय तो वह समृद्धि है। समृद्धि उसी का नाम है कि पहले की सम्पत्ति नष्ट न हो एवं उसमें और शामिल हो जाय। आनन्द की यही स्थिति है वह पहले से जितना रहता है उसमें यदि और कोई दूसरा आनन्द आ जाय तो वह बढ़ता ही है घटता नहीं है। आनन्द केन्द्र में रहता हुआ दूर भी जाता है तो भी वह अपना केन्द्र स्थान नहीं छोड़ता है। यही आनन्द चेतना और सत्ता का कारण है।

आनन्द अपने केन्द्र में रहता हुआ दूर देश तक फैल जाता है। आनन्द का जितना अंश केन्द्र से बाहर होकर फैलता है उसी का चयन होता है। इसी चयन के कारण इसको चेतना कहते हैं। ईंट पर ईंट को रखना ही चयन है। एक गाँठ पर दूसरा गाँठ डालना ही चयन है।

'घड़ा है', और 'किताब है' इन दोनों वाक्यों में जो 'है' तत्त्व है वही सत्ता है। एक ही आभु आनन्दरूप में, चेतनारूप में और सत्तारूप में रहता है।

यह आभु दिशा, देश और काल की सीमा से रहित है।[5] इसका तात्पर्य यह है कि कोई भी वस्तु पूर्व, पश्चिम, उत्तर एवं दक्षिण आदि दिशाओं में ही रह सकती है। यही दिशा उस वस्तु को सीमा में बाँध देती है। देश का अर्थ स्थान होता है। वस्तु कहीं न कहीं स्थान पर ही होगा। अतः स्थान उस वस्तु को सीमा में सीमित है। काल का अर्थ समय है। भूतकाल,

---

[4] आनन्द आदावथ चेतनान्या सत्ता तृतीयेति तदाभुरूपम्। *संशयतदुच्छेदवाद हिन्दीविज्ञानभाष्य, प्रथमकाण्ड,पृ.२२*

[5] दिग्देशकालैरमितं तु यत् तज्ज्ञानं हि तद् द्रष्ट तदाभु विद्यात्। *संशयतदुच्छेदवाद, प्रथमकाण्ड, पृ.१६*

भविष्यतकाल एवं वर्तमानकाल ही किसी वस्तु को अपनी सीमा में बाँधता है। परन्तु यह आभु दिशा, देश और काल की सीमा में कभी भी नहीं आता है।

इस प्रकार आभु पारिभाषिक शब्द को पण्डित मधुसूदन ओझा ने संशयतदुच्छेदवाद, ब्रह्मविनय आदि ग्रन्थों में स्पष्ट किया है। सारांश में यह है कि आभु अमृतस्वरूप, द्रष्टा, मन,प्राण और वाक् , सीमा से रहित और नित्य है।